राजभाषा अनुसंधान और प्रगति

पूरन सिंह[1] एवं विकास कुमार[2]

आज इस वैज्ञानिक युग में किसी भी विषय अथवा व्यवसाय को लें, उसमें छिपे विकास की संभावनाओं का पता लगाने के लिए उसके तह तक जाने की जरूरत है। इसके लिए सम्बद्ध क्षेत्र के इतिहास, तथ्य, प्रक्रिया और उपलब्धियों का अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन आधारभूत कार्य हैं । ऐसा करने के बाद ही क्षेत्र विशेष की स्थिति, संभावनाएँ और तदनुसार भविष्य के लिए अपनाई जाने वाली पद्धतियों का निर्धारण सम्भव हो सकता है। राजभाषा हिन्दी से सम्बन्धित अधिनियमों और नियमों को अमल देने के लिए राजभाषा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में भी ये बातें उतनी ही सार्थक हैं; बल्कि यह कहना कहीं उचित होगा कि राजभाषा हिन्दी के कार्यक्रमों के कार्यान्वयन जैसे संवेदनशील विषय के संदर्भ में उनका महत्व और भी अधिक है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, इस देश में, खास कर राजभाषा हिन्दी के परिप्रेक्ष्य में, प्रबन्धकीय सिद्धान्तों के निरूपण का सौभाग्य सम्भवतः प्रथमतः मुझे ही मिल रहा है। फलस्वरूप, सम्बद्ध विषय पर किसी प्रकार के आलेख, पुस्तक आदि के उपलब्ध न होने के चलते मुझे सर्वत्र अपने अनुभव तथा राजभाषा सम्बन्धी अध्ययन, मनन और चिंतन को ही आधार बनाना पड़ा है। अतः इस अंक के अन्य अध्यायों की तरह, वर्तमान अध्याय के सिद्धान्त-निरूपण भी इसी प्रकार किए गए हैं।

राजभाषा प्रबन्ध संबंधी अनुसंधान पर विचार के क्रम में मेरे मन में कुछ प्रश्न उठे; जो क्रमशः भाषा, प्रक्रिया, सुविधाओं, शक्तियों तथा कार्य-निष्पादन एवं प्रतिफल (उपलब्धियों) से सम्बद्ध थे। उन्हीं प्रश्नों पर चिंतन करते हुए राजभाषा प्रबन्ध अनुसंधान को निम्नांकित पांच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. भाषा सम्बन्धी अनुसंधान
2. प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधान
3. सुविधा सम्बन्धी अनुसंधान
4. शक्तियों के प्रत्यायोजन सम्बन्धी अनुसंधान और
5. निष्पादन और प्रतिफल (उपलब्धियाँ) सम्बन्धी अनुसंधान ।

देश के कई क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन काल से ही, या यूँ कहें कि उससे भी बहुत पहले से ही देशी रजवाड़ों, जमींदारों आदि के कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग राजभाषा के रूप में होता रहा है । आजादी के बाद भारत सरकार के तथा 'क' क्षेत्रों (बिहार, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह) की राज्य/क्षेत्रीय सरकार के, कार्यालयों, उपक्रमों आदि में हिन्दी का कमोबेश राजभाषा के रूप में प्रयोग होता आया है। किन्तु, भारत की आजादी के 75 वर्ष बीतने के पश्चात् तथा संविधान में राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किए जाने के इतने वर्ष बाद भी, आज राजभाषा हिन्दी उन सभी कार्यों के सम्पादन के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पायी है, जिसके लिए इससे पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग होता था। राजभाषा नीति के अनुपालन में इस असफलता के अनेक कारण बताए जाते हैं जिनमें से एक भाषा के स्वरूप से भी सम्बद्ध है। अतः यह आवश्यक है कि हिन्दी के प्रयोग में भिन्न-भिन्न कार्यालयों में अब तक अपनाई गई भाषा के स्वरूपों और उनकी लोकप्रियता पर अनुसंधान किया जाए और फिर यह निर्धारित किया जाए कि किस क्षेत्र के कार्यालयों अथवा किस तरह के व्यवसाय से सम्बद्ध संगठनों के लिए किस तरह की हिन्दी उनके कार्यों/ व्यवसायों को प्रोन्नति देने के लिए उपयुक्त तथा कार्यरत कर्मचारियों के लिए सहज एवं लोकप्रिय होगी।

[1]वित्त मंत्रालय, भारत सरकार,नई दिल्ली
[2]भाकृअप – राष्ट्रीय कृषि आर्थिक एवं नीति अनुसंधान संस्थान

इस सम्बन्ध में हिन्दी भाषा को अध्ययन के लिए दो उप खण्डों में विभक्त किया जा सकता है शब्द बाहुल्य के आधार पर और भाषा की प्रकृति के आधार पर राजभाषा के रूप में भिन्न-भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के जिन अनेक रूपों का प्रचलन देखने में आता है उनमें संस्कृत-निष्ठ हिन्दी भी एक है। वस्तुतः समस्त भारतीय आर्य भाषाओं की जननी संस्कृत की शब्दावली का बाहुल्य तथा प्रभाव देश के सभी क्षेत्रीय भाषाओं में देखने में आता है। यह बाहुल्य और प्रभाव दक्षिण भारत की तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा में और भी अधिक है। अतः इस बात का पता लगाना कि वस्तुतः संस्कृतनिष्ठ हिन्दी राजभाषा हिन्दी के विकास में सहायक सिद्ध हुआ है अथवा नहीं; और यदि हाँ तो क्यों, और यदि नहीं तो क्यों यह आवश्यक है। इस अध्ययन से राजभाषा हिन्दी के प्रयोगजन्य वर्तमान कठिनाई को दूर करने में सम्भवतः काफी कुछ सहायता मिल सकती है। भारत के जिन भागों में लंबे अर्से तक मुसलमानों का शासन रहा, वहाँ स्वभाव हिन्दी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य हो गया। ऐसी भाषा में अरबी-फारसी के मुहावरें और कहावतें आदि भी काफी कुछ घुल-मिल गए। इस तरह, हिन्दी का एक नया रूप बना, जिसे हिन्दुस्तानी के नाम से जाना गया। आजादी के बहुत पहले से देश के अनेक भागों में इस तरह की भाषा आम लोगों के रोजमर्रा के प्रयोग में प्रचलित थी। गाँधी जी ने सम्भवतः इसी हिन्दुस्तानी को देश में संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की भाषा बनाना चाहा था। संदेह नहीं, इस तरह की हिन्दुस्तानी भी कई रजवाड़ों और आजादी के बाद भारत सरकार के कई कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी की जगह प्रयुक्त हुई है। अतः यह आवश्यक है कि राजभाषा के रूप में इसकी स्थिति का भी अनुसंधान किया जाए।

हिन्दी के अनेक रूपों में खड़ी बोली हिन्दी का रूप भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके नाम के पीछे कई तर्क दिए जाते हैं जिनमें खड़ी पाई का प्रयोग भी एक है। वस्तुतः यही हिन्दी, हिन्दी की जननी दिल्ली और दिल्ली से लगा हुआ उत्तर प्रदेश का जिला मेरठ एवं उसके आस-पास की मातृभाषा है। अमीर खुसरो इसी भाषा के कवि थे। हिन्दी के अनेक रूपों के बीच खड़ी बोली का प्रचार स्वतंत्रता के पहले से ही अनेक क्षेत्रों में था और स्वतंत्रता के बाद, अधिकांश राजनेताओं द्वारा हिन्दुस्तानी को राजभाषा की प्रतिष्ठा देने के प्रयास के बावजूद खड़ी बोली को इस स्थान पर कब्जा जमाने से कोई रोक नहीं सका। इसके पीछे जो कारण रहे हैं, उनका अनुसंधान निश्चय ही राजभाषा प्रयोग को प्रसार देने सम्बन्धी नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण - आधार बन सकते हैं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उर्दू-हिन्दी भाषा की एक बोली मात्र है, साहित्यिक कृतियों के कारण इसे हिन्दी भाषा के एक अलग रूप में भी देखा जा सकता है । हिन्दी भाषा के इस रूप को हमारे राजनीतिज्ञों ने प्रारम्भ से ही एक स्वतंत्र भाषा के रूप में महत्व देना शुरू किया; और, यद्यपि भाषा के इस रूप के बोलने वालों की संख्या नगण्य थी कारण, मुसलमान भी अपने-अपने क्षेत्र की आम जनता की बोली बोलते रहे, इसे संविधान की अष्टम सूची में भी हिन्दी से अलग राजभाषा के रूप में स्थान दिया गया। उर्दू की लिपि से अपरिचित; परन्तु भाषा के इस रूप से परिचित कुछ रजवाड़ों के कारिन्दों तथा स्वतंत्रता के पश्चात् कुछ सरकारी कर्मचारियों द्वारा भी देवनागरी लिपि में इस भाषा का प्रयोग राजकाज में हुआ है, इसके इस रूप में प्रवेश, प्रयोग और अस्वीकृति के पीछे के कारणों का अनुसंधान भी अपेक्षित है।

हिन्दी भाषा के उपर्युक्त रूपों से भिन्न, कम प्रचलित रूप ही सही, परन्तु एक रूप और रहा है जिसे खिचड़ी हिन्दी के रूप में जाना जा सकता है। यह ऐसी हिन्दी है जिसमें कृत्रिम रूप से, प्रयोगकर्ता अपनी पसंदगी के चलते अथवा गलत धारणाओं के शिकार होने के चलते हिन्दी के साथ अक्सर अंग्रेजी को घुसेड़ने का प्रयास करता है। ऐसी भाषा बोलचाल में ही नहीं, कार्यालीन कार्यों में भी जहाँ-तहाँ प्रयोग में आ रही है । भाषा के इस विकृत स्वरूप के चलते हिन्दी के प्रति आकर्षण नहीं, विकर्षण का भाव मन में पैदा होना, स्वाभाविक हो सकता है, जो राजभाषा

हिन्दी के प्रयोग को पहल देने में बहुत कुछ बाधक सिद्ध हो सकता है। अतः यहाँ भी इस संबंध में अनुसंधान आवश्यक है।

भाषा की प्रकृति

बोलचाल की हिन्दी से तात्पर्य ऐसी हिन्दी से है जिसका प्रयोग हाट-बाजार गाँव-पाल,रोजमर्रा की आम बातचीत तथा आपसी व्यवहार के लिए किया जाता है। जबकि मानक हिन्दी निर्धारित शब्दावली के प्रयोगपरक और उच्च स्तरीय हिन्दी है।

माध्यमिक हिन्दी से तात्पर्य, उस हिन्दी से है जिसमें विशिष्ट प्रयोजन से तो निर्धारित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, किन्तु अन्य प्रयोजन से लोकविहित सामान्य शब्दावली का प्रयोग होता है। ऐसी हिन्दी की भाषा मध्यम स्तर की सहज बोधगम्य होती है। राजभाषा हिन्दी के प्रसंग में यह जान लेना आवश्यक है कि राजभाषा का यह पक्ष आधारभूत पक्ष है और राजभाषा हिन्दी के प्रावधानों के अनुपालन की सफलता-असफलता बहुलांश में इस पक्ष की सुदृढ़ता पर ही निर्भर है। अतः इस पर गंभीरता से अनुसंधान आवश्यक है ताकि उसकी परिणति वर्तमान व्यवस्था में सुधार तथा भविष्य की योजना के निर्धारण में मार्गदर्शक बन सके।राजभाषा हिन्दी की प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसंधान को निम्नांकित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :

प्रशासनिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में अनुसंधान का विषय है कि राजभाषा हिन्दी के प्रावधानों को पहल देने के लिए गठित विभाग/ प्रकोष्ठ / अनुभाग का प्रशासनिक प्रधान कौन है ? क्या उसे संगठन के प्रधान / एकक के प्रधान द्वारा सीधे देखा जाता है, अथवा इसे मुख्य अधिशासी के बाद ऊपर से ठीक दूसरे स्तर के (उपक्रमों के संदर्भ में निदेशक) द्वारा देखा जाता है, अथवा इसका प्रशासनिक प्रधान बीच के स्तर के/ निम्न स्तर के किसी अधिकारी को बनाया गया है। फिर यह भी कि किस स्तर के प्रशासनिक प्रधान के अधीन विभागीय कार्य-निष्पादन, कार्यगुणवत्ता कैसी रही है? आम तौर पर अभी तक के मेरे जैसे अध्येताओं के व्यक्तिगत अनुसंधान तथा अनेक संबद्ध विद्वानों की राय में प्रशासनिक प्रधान यदि संगठन में दूसरे स्तर के (उपक्रमों के संदर्भ में निदेशक) हों और वे राजभाषा प्रबंधक से सीधा संपर्क रखें तो कार्य-निष्पादन, गुणवत्ता नियंत्रण तथा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुकूल है। मध्यम स्तर के प्रशासनिक प्रधान के होने से उच्च प्रबंधक (निर्णय लेने में सक्षम प्राधिकारी) तथा राजभाषा प्रबंधक के बीच सीधा संपर्क नहीं रहता। फलस्वरूप, अनेक स्थितियों में राजभाषा प्रबंधक द्वारा संगठन के हित में प्रस्तावित कार्यक्रमों से आम तौर पर मध्यम स्तरीय राजभाषा विभाग के प्रशासनिक प्रधान के दुरामह के कारण उच्च प्रबंधक या तो परिचित ही नहीं हो पाता, या उसके सामने वे कार्यक्रम तोड़-मरोड़ कर दूसरे रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि वह उसके गुणों से परिचित न हो पाए और अन्ततः अस्वीकार कर दे। ऐसी स्थिति में संगठन, संप्रेषण शून्यता (communication gap) के चलते राजभाषा सम्बन्धी समुचित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन से प्राप्त समुचित लाभ से वंचित रह जाता है। अतः इस सम्बन्ध में गहराई के साथ अनुसंधान की अपेक्षा है।

निष्पादन प्रक्रिया के अन्तर्गत राजभाषा हिन्दी के प्रावधानों को पहल देने से सीधे जुड़े और इस दायित्व के निर्वाह के लिए जिम्मेवार राजभाषा प्रबंधक की स्थिति सम्बन्धी अनुसंधान से है। इसके अधीन अनुसंधान का विषय यह देखना है कि आकार-प्रकार का ध्यान रखते हुए किस स्तर का राजभाषा प्रबंधक संगठन / एकक के राजभाषा विभाग का कार्यात्मक प्रधान है। कारण, ऐसा माना जाता है कि विभाग में यदि कार्यात्मक प्रधान अर्थात् राजभाषा प्रबंधक वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी, राजभाषा अधिकारी जो भी हों, उच्च स्तर का अधिकारी है, तो वह अपने प्रभाव का प्रयोग कर निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में अधिक कारगर होगा, बनिस्पद अन्य छोटे स्तर के अधिकारियों के प्रधान बनने से, जिनके लिए विभिन्न एककों/ विभागों के प्रमुख को हिन्दी के प्रयोग के लिए उत्प्रेरित करना कठिन हो सकता है।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की सफलता निष्फलता एक हद तक राजभाषा विभाग को प्राप्त अपेक्षित सुविधाओं की स्थिति पर भी निर्भर है। अतः इस संबंध में किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि राजभाषा सुविधाओं पर समुचित अनुसंधान किया जाए।

राजभाषा के उत्तरदायित्व में सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि राजभाषा प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित उपकरण सुविधा भी उसे उपलब्ध हो। अतः इस संबंध में इस स्थिति पर अनुसंधानकर्ता का ध्यान जाना जरूरी है कि अब तक इस कार्य के लिए भिन्न-भिन्न शासनों एवं संगठनों को भाषिक उपकरण तथा कार्यपरक अन्य उपकरणों की उपलब्धि कैसी रही है और ऐसे उपकरणों की उपलब्धि-अनुपलब्धि की कोटि और मात्रा ने राजभाषा के कार्यान्वयन को किस रूप में प्रभावित किया है। आज के कम्प्यूटर युग में, जहाँ जीवन के हर क्षेत्रों में तेजी से बढ़ने के लिए कम्प्यूटर की अहम भूमिका है, राजभाषा के प्रयोग को पहल देने तथा इस संबंध में तेजी से आगे बढ़ने के लिए विभिन्न विभाग और विषयों यथा अपेक्षित सम्बद्ध कार्यों के त्वरित और निपुणता से निपटान के लिए तदनुकूल हिन्दी सॉफ्टवेयर को विकसित करने के प्रयास की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। अतः इस संबंध में विभिन्न परिवेशों को मद्देनजर रखते हुए स्थितिपरक अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना और प्राप्त तथ्यों के आधार पर भावी योजना का निर्माण और कार्यान्वयन राजभाषा को समुचित स्थान दिलाने के लिए कारगर सिद्ध हो सकता है।

उपकरण सुविधाओं में संगठन विशेष के भाषिक उपकरण, यथा, देवनागरी टाइपराइटर, द्विभाषी इलेक्ट्रानिक टाइपराइटर,सुविधाओं की उपलब्धि अथवा अभाव का राजभाषा कार्यान्वयन पर पड़ने वाले प्रभाव भी अनुसंधान के अपरिहार्य विषय है।

राजभाषा के लिए अपेक्षित विषयों में राजभाषा विभाग/अनुभाग, राजभाषा कार्यशालाएँ और प्रशिक्षण तथा हिन्दी पुस्तकालय के लिए संगठन /एकक के आकार-प्रकार, कार्य एवं जन-शक्ति आदि का ध्यान रखते हुए समुचित कक्षों की स्थितियां भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अनेक संगठनों में जहाँ राजभाषा कर्मचारियों के एक जगह बैठने को भी व्यवस्था नहीं है, राजभाषा प्रशिक्षण, हिन्दी कार्यशाला के लिए उपस्करों से सज्जित कक्ष तथा अलग से एक अच्छे हिन्दी पुस्तकालय की बात तो दूर रहे वहाँ राजभाषा हिन्दी के प्रावधानों की कैसी दुर्दशा है, तथा इसके विपरीत ऐसे संगठन जहाँ इन सभी के लिए उपस्कर सज्जित तथा समस्त अपेक्षित अन्य संबद्ध साधनों से युक्त अलग-अलग कक्षों की व्यवस्था है, वहाँ प्रावधानों का कितना कारगर कार्यान्वयन है, यह देखने से इस सम्बन्ध में अनुसंधान की आवश्यकता प्रतीत होती है।

आज अधिकांश राजभाषा प्रबंधको की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। वह राजभाषा विभाग का कार्यात्मक प्रधान तो होता है, उसके कंधे पर राजभाषा प्रावधानों के अनुपालन का दायित्व तो है, परन्तु इनसे सम्बन्धित प्रशासनिक, कार्मिक एवं वित्तीय शक्तियाँ उसके प्रशासनिक प्रधान के पास होती हैं, जो प्रत्यक्षतः किसी दूसरे विभाग का प्रधान होता है, और जिसे मात्र राजभाषा प्रबन्धक के प्रस्ताव को अनुमोदन देने अथवा लम्बित रखने या उत्साहित-अनुत्साहित करने के अतिरिक्त राजभाषा के कामों से आम तौर पर कुछ भी लेना-देना नहीं होता। कतिपय स्थितियों में तो यदि राजभाषा प्रबन्धक कुछ कारगर कदम उठाता है और उसके चलते यदि वह संगठन के उच्च प्रबन्धकों के सदाशय का पात्र बनने लगता है, तो उसे अपने उक्त प्रशासनिक प्रधान के कोप का भाजन भी बनना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राजभाषा प्रबन्धकों के लिए राजभाषा सम्बन्धी प्रशासनिक, कार्मिक तथा वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की स्थिति का व्यापक अनुसंधान परमावश्यक है।

राजभाषा प्रावधानों के व्यापक क्षेत्रों में निष्पादन की स्थितियों के अनुसंधान के क्रम में उनसे प्रभावित तत्वों की जानकारी स्वभावसिद्ध है। फिर निष्पादन के साथ परिणाम यानी परिणति के स्थितिपरक अनुसंधान

से निष्पादन और परिणाम के बीच के उन तारतम्यजन्य तत्वों की भी जानकारी स्वतः हो जाती है, जो इनकी सफलता-विफलता के कारण बनते हैं।, एक निश्चित समय सीमा के अन्तर्गत औसत राजभाषा कार्य की मात्रा का अध्ययन अपेक्षित है। ये राजभाषा कार्य हैं, संगठन के वैधिक, सामान्य एवं व्यावसायिक कागज पत्रों, नियमों, करारों, संविदाओं रिपोर्ट आदि का अंग्रेजी से हिन्दी, और कभी-कभी हिन्दी से अंग्रेजी रूपांतरण; राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से पत्राचार, रिपोर्ट, टिप्पण आदि सामान्य कार्यों के अतिरिक्त, सहायक साहित्य का निर्माण, हिन्दी में राजभाषा लघु-पुस्तिका (ब्रॉयर), डायरी, कैलेण्डर तैयार करना, उच्च प्रबन्धकों के लिए आलेख, संदेश आदि तैयार करना, राजभाषा पत्रिका के लिए सामग्रियाँ तैयार करना, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों के लिए कार्यसूची (एजेण्डा), नोट्स, कार्यान्वयन रिपोर्ट, कार्यवृत्त (मिन्युट्स) तैयार करना, मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्यों से माँगी गई जानकारी तैयार करना, राजभाषा संबंधी संसदीय प्रश्नों का जवाब तैयार करना, आदि। उपर्युक्त मात्रात्मक निष्पादन कार्यों के निष्पादनगत गुणात्मकता अर्थात उत्कृष्टता न्यूनतापरक अनुसंधान सम्मिलित हैं। यहाँ, अनुसंधानकर्ता को यह देखना हो सकता है कि निष्पादन किस कोटि का है। वह उच्च कोटि का अर्थात् उत्कृष्ट है, मध्यम वर्गीय है अथवा निम्न कोटि का है। यह भी कि गुणवत्ता के स्तर में वृद्धि, स्थिरता अथवा न्यूनता के कारण क्या हैं? अन्ततः यह भी अपेक्षित है कि कार्य-निष्पादन और उसके स्वरूप और गुणवत्ता के साथ-साथ निष्पादन के परिणाम अर्थात् उपलब्धियों पर भी अनुसंधान किया जाए और इस बात का पता लगाया जाए कि उच्च उपलब्धियों के लिए किस प्रकार के कार्य और किस कोटि का निष्पादन अपेक्षित है। वस्तुतः प्रतिफल ही हमारा लक्ष्य है। परन्तु उस लक्ष्य को पाने के लिए हमारे प्रयास की दिशा का समतूल और प्रभावोत्पादक होना जरूरी है ताकि समय, अर्थ और श्रम की मितव्ययिता का ध्यान रखते हुए हम उच्च से उच्च और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट उपलब्धियों को प्राप्त करने में सफल हो सकें।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रानंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रानंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी सुमित्रानंदन पंत हिंदी साहित्य के विलियम वर्ड्सवर्थ कहे जाते हैं। इन्होंने महानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। इन्हें पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है।